उड़ीसा की पारंपरिक चित्रकला : पटचित्र

डा. दीनानाथ पाठी

चित्रकार उड़ीसा शैली की चित्रकला में घनिष्ठ भाव से जुड़े हैं। उड़ीसा में दस्तकारों का यह सबसे बड़ा समुदाय कहा जा सकता है। अधिकांश को 'महापात्र' या 'महारणा' कहा जाता है एवं यही उनके उपनाम हुआ करते हैं। कुछ लोग अपने को 'दास', 'सुबुधि', 'पाइकराय' या विंघाणीरत्न भी कहते हैं। वैसे 'महापात्र' एक ऐसा उपनाम है जो प्राह्मण से लेकर कायस्थों तक सभी में मिलता है, यहाँ तक कि हरिजनों में भी महापात्र मिलते हैं, दर असल पहले उड़ीसा में 'महापात्र' उपाधि राजाओं के यहाँ युद्ध संबंधी या वैदेशिक मामलों की देखभाल करने वाले उच्च अधिकारियों को प्रदान की जाती थी। ऐतिहासिक प्रमाणों से इस उपाधि के तेरहवीं सदी से प्रारंभ होने का आधार मिलता है। इनमें मुख्य होता था 'संधिविग्राहिक महापात्र'।

'पाइकराय' एक और सैनिक उपाधि है जो एक सैन्य गुल्म (पाइक दल) के अधिपति को दी जाती थी। ये उपाधियाँ जाति और स्तर के किसी भेदभाव के बिना दी जाती रही हैं। ऐसे भी ब्राह्मण कवि मिलते हैं जो 'खड्गराय' कहलाते हैं जो कि 'पाइकराय' से मिलती जुलती है। हालांकि विंघाणीरत्न उपाधि का सैनिक उपाधियों से दूर का भी वास्ता नहीं है। यह उन्हीं दस्तकारों को दी जाती थी जो अपनी कला में दक्ष होते थे। इस प्रकार 'विंघाणीरत्न' उपाधिधारी चित्रकारों के अलावा लौहकार, स्वर्णकार एवं काष्ठकार भी मिलते हैं।

महापात्र, महारणा, पाइकराय आदि उपाधियों से स्पष्ट होता है कि चित्रकार भी युद्ध संबंधी दायित्व से मुक्त नहीं रखे जाते थे। बल्कि दूसरों की तुलना में उनका स्थान कुछ ऊंचा रहता था। उन दिनों कोई स्थायी 'सेनावाहिनी' तो रहती नहीं, वरन् युद्ध के समय समाज के विभिन्न वर्गों से लोगों को नियुक्ति दी जाती थी।

'चित्रकार' शब्द का तात्पर्य चित्र करने वाले से ही लिया जाता है। आज समुदाय 'चित्र' शब्द को साधारणत: चित्रकला के अर्थ में ही प्रयोग किया जाता है। प्राचीन ग्रंथों से पता चलता है कि 'चित्र' शब्द त्रिआयामी मूर्ति के लिए प्रयोग होता था और रिलीफ को अर्थचित्र कहा जाता था। चित्रकला को 'चित्रभाषा' कहा जाता था, जिसमें चित्र या मूर्ति का आभास रहता हो। उन दिनों भारत में चित्रण करने वाले या मूर्तिकार में वैसा खास अन्तर नहीं होता जैसा कि आजकल होता है। दोनों कार्यों का एक ही में समावेश होता था, एवं कलाकारों को 'शिल्पी' संबोधित करते थे। जो आजकल मूर्ति बनाते हैं वे ही चित्र का निर्माण कार्य भी करते थे।

चित्रकारों का आज का कार्य उनके परंपरागत नाम 'चित्र' को सार्थक करता है। चित्रकार चित्रण करते हैं, मूर्ति बनाते हैं, काठ, पत्थर एवं हाथी दांत पर खुदाई करते हैं, धातु को साँचे में ढालते हैं और ताड़पत्र पोथी पर अंकन भी करते हैं। 'महारणा' आजकल आधुनिक मंदिर निर्माण में उसी तरह काम करते हैं जैसे कि राजमिस्त्री। हालांकि एक विभाजक रेखा महापात्र और महारणा के बीच खींचना कठिन होगा, परन्तु अनुभव से पता चलता है कि ज्यादातर महापात्र चित्रकार होते हैं और महारणा ज्यादातर काष्ठकार या वास्तुकार। इसीलिए हल्का सा विभाजन 'चित्रकार' और 'रूपकार' कहकर किया जाता है। यह सिर्फ पुरी जिले तक सीमित है और खासकर पुरी शहर में।

वैसे देखा जाए तो चित्रकार न उपाधि है और न जाति सूचक उपनाम। यह मुख्यत: एक पेशे की ओर संकेत करता है, विशेषकर ऐसे लोगों का समूह जो कई तरह के पेशे में लगे हुए हैं, खासकर चित्रकला में। शायद 'चित्रकार' चित्रण करने वालों के बीच बहुत प्रचलित शब्द है। नेपाल में नेवारों की एक जाति होती है जो मंदिरों, पूजास्थलों देवी देवताओं पर रंग लगाने में नियोजित होती है, उसे भी चित्रकार ही कहा जाता है। जैन पांडुलिपियों के रंग करने वालों को भी 'चित्रकाठी' कहा जाता था, जो कि 'चित्रकार' से मिलता-जुलता शब्द है। बंगाल में परंपरागत हिन्दू चित्रण करने वालों को चित्रकार ही कहा जाता है। उनमें कुछ अपनी उपाधि चित्रकार रख लेते हैं।

उड़ीसा में चित्रकारों के अलावा भी कुछ जाति के लोग हैं जो परंपरागत अंकन से जुड़े हैं। उनमें से कुछ हैं—दत्तमहापात्र,, पतिमहापात्र, शुद्धसुआर, श्रीमुखसिंहारी आदि। दत्तमहापात्र और श्रीमुखसिंहारी एक दूसरे की पर्यायवाची उपाधियाँ हैं, उनमें एक का दूसरे की जगह प्रयोग होता रहता है। यह चित्रकार कुछ विशिष्ट अवसरों पर चित्रकारी करते हैं, इस कला से न ये मुनाफा कमाते हैं और न खुशी के लिए कभी उपयोग करते हैं।

बंगाल में चित्रकारों के लिए एक विशेष शब्द का प्रयोग हुआ करता है। उन्हें 'पटुआ' कहा जाता है। 'पटुआ' शब्द की उत्पत्ति 'पट' या 'पट्ट' शब्द से हुई है। उड़ीसा में चित्रकार लोग पट पर चित्रकारी करते हैं, लेकिन इस शब्द का व्यापक और वृहत्तर अर्थ में प्रयोग होता है। चित्रकार यहाँ पट चित्रकारी के अलावा भी कई काम करते हैं। जैसे गंजपा, मुखौटे एवं काठ के खिलौने बनाना, ताड़पत्र पोथी पर लिखना और भित्तिचित्र बनाना आदि। शायद इसी कारण 'चित्रकार' शब्द इनके लिए अधिक उपयुक्त होगा।

ऊपर बताये गये तीन प्रकार के चित्रण करने वालों के अलावा और भी तीन तरह के लोग हैं जो पारंपरिक चित्रकला से जुड़े हैं। ये हैं—लोहे की लेखनी से चित्र बनाने वाले जो कि ताड़पत्र पर चित्र बनाते हैं दूसरे यमपट दिखाने वाले और फिर वे जो पाटुवा-यात्रा से संबंधित होते हैं। ताड़पत्र पोथी पर चित्रकारी करने वाले बिलकुल ही अलग श्रेणी के लोग होते हैं। वे साहित्यिक कृति को ताड़पत्र पर लिखते और फिर सचित्र बनाते हैं। इस बात की जाँच के लिए हमने उड़ीसा राज्य संग्रहालय में सात ताड़पत्र की पोथियों को देखा जिनमें ताड़पत्रपोथी लिखने वालों ने अपने नाम दिये हैं। ये नाम या तो ब्राह्मणों के हैं या कायस्थों के लेकिन चित्रकारों के नहीं। एक पोथी में लिखनेवाला चित्रकार है और उसने अपना नाम स्पष्टत: पुष्पिका में लिख दिया है। इसके अलावा शैली-भित्तिक प्रमाण भी हैं जिनसे पता चलता है कि चित्रकारों की एक अलग श्रेणी होती थी जो कि लेखनीकारों से भिन्न थी। उदाहरणार्थ हम शिव को ले सकते हैं। ताड़पत्रपोथियों एवं पट चित्रों को अलग-अलग प्रकार का अंकन हुआ है। पट में शिव को नंदी की सवारी के बिना अंकित किया गया है—भाल पर सर्प इस प्रकार अंकित हुआ है कि पीछे की ओर लम्बा होता कंधों तक पीछे लटकता दिखता है। ताड़पत्र पर अन्य किसी देवता की तरह चतुर्भुज रूप में आयुधों और वाहन सहित आंका गया है। उसी तरह बलराम को भी बिना नागफन के ही ताड़पत्र पर अंकित किया गया है जबकि पट चित्रों में उन पर नागफन होना जरूरी माना जाता है। पट चित्रों में जगन्नाथ मंदिर का अंकन महत्वपूर्ण है जो प्राचीन ताड़ पोथियों में नहीं मिलता। परन्तु भित्तिचित्रों में उपलब्ध होता है। ऐसा लगता है कि इस विषय का ताड़पोथियों में प्रवेश पट चित्रों के प्रभाव स्वरूप आगे चलकर 18वीं सदी में हुआ है। उसी प्रकार ताड़-पत्रों पर किये जाने वाले सूक्ष्म काम इतनी बारीकी से पटचित्रों पर नहीं किये जाते। ऐसा बारीक काम ताड़पत्रों तक ही सीमित है जो पट चित्रों के विषय तक को प्रभावित नहीं कर पाते। ताड़पत्र के राधा-कृष्ण का मिलन संबंधी दृश्यकारी चित्रों में ताड़पोथियों में खूब मिलता है पर पट चित्रों में शायद ही कहीं अंकित हुआ है। अगर चित्रकारों को ताड़पत्रों को सचित्र करने के काम में लगाया जाता तो इन विषय और शैलियों का प्रभाव उनके काम पर अवश्य पड़ा होता। अत: यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि लेखनीकार और चित्रकार अलग हुआ करते थे। लेखनीकार सामान्यत: कवि एवं लेखनीकार उभय हुआ करते या सिर्फ मूल पांडुलिपियों की नकल उतारनेवाले होते। जबकि चित्रकार की शैली और कलात्मक शक्ति उनसे भिन्न होती।

उड़ीसा में जो लोग यमपट लेकर घूमते हैं वे बंगाल के पटुआ चित्र बनाने वालों की तरह नहीं होते। पटुआ चित्रकार स्वयं अंकन करते हैं, प्रदर्शन करते और पटचित्रों के आधार पर गाते तथा ग्राम्य क्षेत्रों में लोक मनोरंजन करते हैं। हमने यमपट का प्रचलन गंजाम जिले में दो दशक पहले देखा है। आजकल यह कला विलुप्त प्राय है दो वर्ष पहले डा. एवरहार्ड फिशर के साथ पारलाखेमंडी में घूमते समय हमने एक मंदिर में भित्तिचित्र देखा था। हालांकि प्रदर्शनकर्त्ता मध्यप्रदेश का था किन्तु मूल चित्र उड़ीसा का ही था। इन चित्रण में जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा का

अंकन प्रमुख था जो कि उड़ीसा चित्रकारों से ही संबंध रखता था। दरअसल पारलाखेमंडी प्रवास के दौरान हमने चित्रकारों द्वारा यमपट का अंकन देखा। पता चला कि प्रदर्शन करने वालों की आवश्यकतानुसार चित्रकार उन यमपटों की नकल बनाकर देते हैं। इन यमपटों की तुलना में 7वीं सदी के हर्षचरित में वर्णित चित्रकला से की जा सकती है। बाण भट्ट लिखते हैं—किस प्रकार बच्चे चित्रों को लपेटकर लिए आदमी को घेर कर खड़े हैं जिनमें मृत्योपरांत दृश्यों का अंकन हुआ, या यम भैंसे पर सवार हैं या नरक का दृश्य है। उड़ीसा के यमपट प्रदर्शन करने वाले बंगाली पटुआ लोगों की तरह गाते हैं। लेकिन उड़ीसा के पट चित्रकार द्वार-द्वार पर आजीविका के लिए पट को लेकर घूमते नहीं है। दूसरे शब्दों में उनका निर्धारित व्यवसाय है। गायन प्रदर्शन और अंकन अलग-अलग कार्य हैं। ओषाकोठी चित्रों में गायन धार्मिक कृत्य का अभिन्न अंग होता है। दीवार पर बने चित्र के सामने गायक गाता है। वह चित्र का वर्णन करता है और ग्रामवासियों के मंगल के लिए उनके आशीर्वाद मांगता है या कल्याण कामना करता है।

उड़ीसा में चित्रकार जगन्नाथ परंपरा से जुड़े हैं। भारत के इतिहास में अनेक क्षेत्रीय चित्रकला की शैलियाँ जनमती और मिटती रही हैं, मगर उड़ीसा में चित्रकला की यह शैली बनी रही। चित्रकार आज भी इसमें जुटे रहते हैं। चित्रकला को धर्म और उसकी परंपरा के प्रचार-प्रसार हेतु विश्वभर में उपयोग में लाया जाता रहा है। बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त और वैष्णवों ने अपने-अपने संप्रदाय के प्रसार के लिए मूर्तिकारों, चित्रकारों की सेवाओं को स्वीकार किया है। जब गंग वंश अपनी चरम अवस्था में था, तब (1078 ई से 1435 ई) पटचित्रों को अधिक से अधिक प्रोत्साहन मिला था।

जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा के रंगीन चित्र ही पट चित्रों के प्राचीनतम प्रमाण स्वरूप मिलते हैं। विग्रहों के प्राचीनतम रूप पाना कठिन है क्योंकि समय-समय पर उन्हें छुपाया गया और विधर्मियों के आक्रमण के फलस्वरूप नष्ट भी किया गया था। लेकिन रंगीन मूर्तियों की परंपरागत मूर्ति निर्माण जितनी ही प्राचीन है। मूर्ति निर्माण का प्रारंभ वर्तमान मंदिर के निर्माण (12वीं सदी) के साथ ही हुआ होगा क्योंकि गंग वंशी राजा जगन्नाथ परंपरा के बहुत बड़े समर्थक थे। जगन्नाथ को ही राष्ट्र देवता माने जाते हैं। उनके समय जगन्नाथ के मंदिर भिन्न-भिन्न जगहों में चित्र बनाये गये। यह परंपरा बाद में सूर्य-वंशी गजपति और भोई नरेशों तक कायम रही। तदनुसार काष्ठ मूर्ति निर्माण और चित्रकारी की मांग भी बढ़ती गया।

पुरी में दत्तमहापात्रों द्वारा ही मूर्तियों पर चित्रकारी की जाती है। ये अपने को शंकर परंपरा के मानते हैं। पुरी के बाहर दत्तमहापात्रों की संख्या अधिक नहीं थी। अत: चित्रकारों को ही रखा गया। ये लोग एक ही मूर्तियों की चित्रकारी के काम में लग गये। जहाँ चित्रकार परिवार नहीं थे, वहाँ दूसरे परिवारों से लोग ले लिये गये। जगन्नाथ मंदिरों का प्रसार चित्रकारों को संख्या में वृद्धि का मूल कारण रहा। इसमें भी यह बात स्पष्ट होती है कि देशी रियासतों में ये चित्रकार वहीं मिलते हैं जहाँ जगन्नाथ मंदिर हैं। चित्रकारों के आवागमन को जानने के लिए हमने गंजाम, पुरी, कोरापुट और सम्बलपुर के कई चित्रकारों से भेंट की। विभिन्न जगहों पर बसने के बाद ये चित्रकार मूर्तियों को रंगने तक ही सीमित नहीं रहे, वरन् पट चित्रकला में भी ध्यान दिये। दीवारों पर भी साधारण लोगों के लिए चित्र अंकित किया गया है।

क्रमश: जगन्नाथ मंदिर निर्माण पड़ोसी प्रदेशों आंध्र, मध्यप्रदेश, बंगाल और आसाम में हुई। अधिकांश मंदिर 15वीं से 18वीं सदी के बीच बने और चित्रकारों के परिवार इन विग्रहों की चित्रकारी के लिए भिन्न-भिन्न जगहों पर गये।

उड़ीसा की तरह विभिन्न क्षेत्रों में धर्म और संस्कृति पर आधारित परंपरा का जन्म हुआ। इनमें राजस्थान की नाथद्वारा शैली और बंगाल की कालीघाट शैली प्रमुख है। लेकिन विकास की सीमा बँध जाने के कारण दोनों जगह ये शैलियाँ रुक गयीं लेकिन उड़ीसा में इसने प्रांतीय शैली का रूप विकसित कर लिया क्योंकि इसका संबंध ऐसे विग्रह

से था जिसने समूची संस्कृति, कला और जीवन को सदियों तक प्रभावित किया है। उड़ीसा में यह चित्रण का विषय और शेली उभय दृष्टिकोण से मंदिर कला के रूप में अपनी विशेषता बनाये रखी। अब तक भी अपने मूल सिद्धान्तों में धर्म निरपेक्षता को स्थान नहीं दिया जैसा कि कालीघाट शैली में आगे चलकर हुआ।

ब्रह्मवैववर्त पुराण की कथा के अनुसार एक दंतकथा प्रचलित हैं जिसमें बताया गया है कि किस प्रकार चित्रकारों को चित्र करने से रोका गया। इस कथा के अनुसार विश्वकर्मा के नौ पुत्रों में से एक चित्रकार भी था। विश्वकर्मा के पुत्र सूत्रधार एवं स्वर्णकार सहित चित्रकार को ब्राह्मणों ने शाप देकर जाति से निकाल दिया। कहते हैं कि इन लोगों ने चित्रकारी में ब्राह्मणों के निर्देशों का पालन नहीं किया लेकिन पुरी में स्थिति कुछ और ही दिखाई देगी।

दत्तमहापात्र वास्तव में देखा जाय तो आदिवासी शैली की पेंटिंग की सूचना देते हैं। इस संदर्भ में इस तथ्य का भी ध्यान रखना होगा कि जगन्नाथ का मूल भी शवर संस्कृति में उपलब्ध होता है। उड़ीसा की अनेक प्राचीन जातियों में काष्ठ निर्मित चिह्न की पूजन की प्रथा बहुत पुरानी हैं। मंदिरों में जहाँ सिर्फ अकेले जगन्नाथ की पूजा होती है वहाँ उन्हें 'दधिवामन' या 'पतितपावन' कहा जाता है। इन्हीं को बाद में विष्णु कहकर 'जगन्नाथ' नाम दिया गया। फिर भी दत्तमहापात्रों का जगन्नाथ पर चित्रकारी का संबंध नहीं तोड़ा गया। तत्कालीन परंपराओं और लोकरुचि को ध्यान में रखते हुए इस परंपरा को चलने दिया गया। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं—जो चित्रकार पट-चित्रकारी में कुशल थे उन्हें जगन्नाथ और आनुषंगिक विषयों पर चित्रकारी का काम सौंपा गया। कुछ विद्वानों का कहना है कि चित्रकार बौद्ध थे। संभव है बौद्धकाल में चित्रकार यहाँ बुद्ध संबंधी विषयों पर चित्रकारी करते रहे हों और समय बदलने के साथ वह धारा समाप्त हो गई हो। अत: संभव है जिन लोगों ने नई शैली की चित्रकारी का काम स्वीकार किया उन्हें जागीर, उपाधियां आदि दी गयीं ताकि वे जगन्नाथ एवं धारा के प्रचार-प्रसार कार्य कर सकें और उन्हें जगन्नाथ मंदिर में 'सेवक' कहा जाने लगा।

प्रतिवर्ष रथयात्रा से पूर्व जगन्नाथ, बलभद्र एवं सुभद्रा के विग्रहों पर चित्रकारी की जाती है। जहाँ भी जगन्नाथ मंदिर है, सर्वत्र इस परंपरा का पालन होता है। देवस्नान पूर्णिमा के दिन श्रीविग्रहों को पूर्ण स्नान करवाया जाता है। इस प्रकारण में पुराने रंग छूट जाते हैं। इसके बाद विग्रह ज्वरग्रस्त घोषित कर दिये जाते हैं। पंद्रह दिन तक औषधोपचार चलता है। प्रतिदिन आरोग्य लाभ के लिए कार्यक्रम चलता है। इन पंद्रह दिनों को 'अणसर' का समय कहा जाता है। इस दौरान गर्भगृह बंद रहता है। इसी बीच विग्रहों की मरम्मत आदि का कार्य कर लिया जाता है। विग्रहों के आगे बांस की एक पट्टी की ओट कर दी जाती है। विग्रहों को रत्नसिंहासन से लाकर रखा जाता है और उन पर चित्रकारी की जाती है। ओट करने वाली पट्टी पर विग्रहों के प्रतिनिधि चित्र लगे होते हैं। इन्हें अणसर-पटि कहा जाता है।

मंदिरों में कई बार मुख्य विग्रहों की अनुपस्थिति में स्थानापन्न प्रतिमा पूजा के प्रमाण भी मिलते हैं। ये दूसरे विग्रह आकार प्रकार में अति लघु होते हैं। इन्हें 'बिजेप्रतिमा' कहा जाता है। यात्रा आदि अवसरों पर मूल की जगह इन्हें ही बहुधा बाहर ले जाते हैं। ये विग्रह प्राय: कांस्य निर्मित होते हैं। यहाँ तक उल्लेखनीय है कि पट चित्र भी जगन्नाथ की स्थानापन्न प्रतिमा का कार्य कर सकते हैं। पुरी एवं अन्य स्थानों पर इनका उपयोग होता है। नित्याचार पद्धति में इसकी व्यवस्था दी गयी है। हालांकि पटचित्र पर जल सिंचन कर पादोदक लेना संभव नहीं, अत: पट के चरणों के आगे शंख रखकर पादोदक लिया जा सकता है।

जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा के सूचक ये अणसर पटि वास्तव में नारायण, अनंत और भुवनेश्वरी कहलाते हैं। पतितपावन पटि की अणसर पटि को नीलमाधव पटि दधिवामन पटि कहा जाता है। ये चित्र जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा की नकल नहीं होते, वरन नारायण, अनंत और भुवनेश्वरी का पारंपरिक अंकन लिये होते हैं। शंख, चक्र, गदा,

पद्मधारी नारायण और शंख, गदा, हल, मूसलधारी अनंत, तथा सर्प, अंकुश, अभय तथा वरद मुद्रा में पद्मासना भुवनेश्वरी चित्रित हुआ करती हैं।

दक्षिण उड़ीसा में ये पटि नीलमाधव, संकर्षण और भुवनेश्वरी कहलाते हैं, ये जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा के ही प्रतिरूप हैं मूर्ति निर्माण शैली की दृष्टि से इन चित्रों की तुलना वासुदेव, अनंत और एकानंशा के आकार से की जा सकती हैं। यह पुरी जिले के तुरिनतिरा के बलराम मंदिर में बनी 12वीं सदी की कला के साथ तुलनीय हैं **पांचरात्र-आगमों** के अनुसार जगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा, और सुदर्शन क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध के रूप हैं। संभव है अणसर पटि जगन्नाथ, बलभद्र एवं सुभद्रा के काष्ठरूप से पूर्व के आकार की सूचना देते हों। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चित्रकार शास्त्रीय मूर्तिकला के प्रतिमाओं के प्रतीक हैं न कि आदिवासी काष्ठविग्रहों के। पुरी में बनी अणसर पट में कुछ मूर्तिनिर्माण संबंधी विविधताएँ दिखाई देती हैं। जैसे भुवनेश्वरी सर्प और अंकुश की जगह हाथों में दो पद्म धारण किये होती है। जगन्नाथ पटि और पतितपावन पटि में मामूली से दाढ़ी के अन्तर के अलावा और कोई भेद नहीं मिलता।

पटचित्रों, काष्ठविग्रहों और प्रस्तर विग्रहों के बीच कुछ विशेष संपर्क सूत्र दिखाई पड़ते हैं। विष्णु के दो परंपरागत आयुध शंख और चक्र को जगन्नाथ के दोनों हाथों पर अंकित किया जाता है। उसी तरह बलराम के हल-मूसल दोनों आयुध भी उनके हाथों पर अंकित होते हैं। सप्तफण विशिष्ट नाग-चिह्न बलराम के मस्तक पर अंकित होता है। सुभद्रा के हाथ न होने के कारण उनके विग्रह पर पद्म अंकित होता है। इसके अलावा जगन्नाथ के विग्रह पर एक चरण चिह्न अंकित होता है। नीलमाधव पटि में भी इसी का अनुकरण होता है। श्रीवत्स ब्राह्मण द्वारा विष्णु के वक्ष पर लात मारने की कथा के साथ इसका संबंध है और वही चिह्न यहाँ अंकित है।

अणसर पटि में रंग समावेश की दृष्टि से देखा जाय तो काष्ठ विग्रहों के रंगों से समानता मिलेगी। नारायण या नीलमाधव को काले या गहरे नीले रंग में अंकित किया जाता है। अनंत या संकर्षण को श्वेत रंग से तथा भुवनेश्वरी को पीले रंग से रंग दिया जाता है। इनके समान जगन्नाथ की मूर्ति काली, बलराम की मूर्ति श्वेत एवं सुभद्रा की मूर्ति पीली होती है। यहाँ तुलनात्मक दृष्टि से कहा जा सकता है—पुरी मंदिर में विमला के मंदिर में अंकित भुवनेश्वरी का चित्र गुलाबी रंग से बना है। कहने का अर्थ है कि अणसर पटि में भुवनेश्वरी का अंकन सुभद्रा के रंग के अनुरूप पीला होता है।

जगन्नाथ, बलभद्र एवं सुभद्रा आदि विग्रहों की चित्रकारी में कम से कम पंद्रह दिन लग जाते हैं। इस दौरान चित्रकार उपवास रखते हैं एवं हविष्य लेते हैं। सिर्फ अपराह्न में ही भोजन करते हैं। मांस, मदिरा, मैथुन आदि से इस समय दूर रहते हैं देव स्नान पूर्णिमा के दिन श्रीमंदिर के पंडा, चटि, तलंगीवाद्य, घंटा आदि बजाते हुए चित्रकार के घर आते हैं। चित्रकार द्वारा निर्मित चित्रों को बालभोग अर्पण करते हैं। पट चित्र में प्राण प्रतिष्ठा के लिए ब्राह्मण को बुलाया जाता है तब पटचित्र को समारोह पूर्वक मंदिर में ले जाते जाया जाता है। यात्रा में चित्रकार स्वयं चित्र को हाथ में लिए चलता है। मंदिर में 15 दिन तक इन चित्रों की पूजा अर्चना होती है। इस सेवा के लिए राजा द्वारा चित्रकार को भूमि प्रदान किया जाता है। आजकल तीन चित्रों के लिए पारिश्रमिक स्वरूप चित्रकार को छः रूपये मिलते हैं।

यहाँ '**जगन्नाथ स्थल वृत्तम्**' से कुछ अंश दिया जा सकता है जिसमें जगन्नाथ मंदिर में अंकित चित्रों का आकर्षण विवरण मिलता है। सुबह धूप (भोग) के बाद आषाढ़कृष्ण त्रयोदशी के दिन सेवक छत्र, चंबर, वीरकाहाली के साथ जाते हैं धूप, कपूर, चंदन और शुद्ध रंग लेकर पूजक चित्रकारों के घर जाकर आमंत्रित करते हैं और चित्रकारों के साथ मंदिर लौट आते हैं। पहले दइता एवं पति विग्रहों पर कुछ जल सिंचित करते हैं। बाद में श्रीमुखसिंगारी रंगों से समूची देह पर रंग करता है, प्रति विग्रह के नेत्र अंकित करता है ताकि वे सम-दृष्टि हों। यह रंगने का कार्य ऐसा हो कि द्वादश पर्वों में साल भर टिक सके। जब गुंडिचायात्रा के लिए विग्रहों को रथयात्रा में नरेन्द्र

सरोवर के पास ले जाते हैं, रंग संबंधी कोई त्रुटि दिखाई दे तो फिर वहाँ दइता एवं पति द्वारा जल सिंचन के बाद रंग ठीक किया जाता है। चित्रकार को इस कार्य के लिए श्रीमंदिर के खजाने से प्रतिदिन एक स्वर्णमुद्रा देने का विधान है। रंग कार्य (बढ़िलागि) के बाद मंदिर के व्यवस्थापक (देउल परिछा) और मंदिर के कारकून (देउल करण) को भोग-प्रसादम् प्राप्त होता है। विग्रहों के लिए प्रयुक्त रंगों को अलग रखा जाता है तथा चित्रकारी के समय सूत से बने धागे का ही प्रयोग (नापने आदि के लिए) होता है। आषाढ़कृष्ण चतुर्दशी से पूर्व यह सारा कार्य (रंग एवं चित्रकारी) संपन्न किया जाता है। अगले दिन (अमावास) समूचे विग्रह पर पालिश का लेप चढ़ाया जाता है। इसमें बलराम का रंग श्वेत होता है और नेत्र उनके पुंडरीक सदृश होते हैं। तदनुसार उन पर बारह लेप किये जाते हैं। सुभद्रा का रंग केसरिया होता है। आषाढ़शुक्ल प्रतिपदा के दिन को नेत्रोत्सव कहा जाता है, उसी दिन विग्रहों के नेत्र अंकित होते हैं।

इस विवरण से स्पष्ट है कि श्रीमुख सिंगारी शब्द का प्रयोग दत्तमहापात्र के लि होता है न कि चित्रकार के लिए। क्योंकि चित्रकार विग्रहों पर रंग प्रयोग नहीं करते।

इतना ही नहीं, दत्तमहापात्र लोग दइतापति की तरह अणवसर के दौरान अशौच मनाते हैं और अपने कपड़े धोबी को नहीं देते। इस प्रकार के अशौच का पालन हिंदू परिवार में जन्म-मृत्यु आदि अवसरों पर हुआ करता है। दत्तमहापात्र शंख को कूट कर श्वेत, काजल से काला तथा हिंगुल और कस्तूरी आदि कूट कर पीला रंग अपने घर पर ही अणवसर के लिए प्रस्तुत करते हैं। मंदिर के लिए टाट (पट्टी) लाने का दायित्व भी उन्हीं का होता है, इसका उपयोग अधरपोछा तथा बनकुलागि के समय होता है। खड़ी (चाक का घोल) दत्तमहापात्र को महाराज की ओर से जागीर मिली होती है। इसके अलावा प्रतिदिन निम्नप्रकार से उन्हें मंदिर से 'खेई' मिलती है।

आड़िसा (चावल की एक मिठाई)	—	1
पखाल (भात में पानी डालकर बनायी भोज्य-सामग्री	—	1
भोगपीठा (मिठाई)	—	1
इसके अलावा पर्व के दिन उन्हें निम्न पदार्थ भी दिये जाते हैं:		
सातपूरी-काकरा (एक प्रकार की चावल निर्मित मिठाई)	—	4
एक बड़ा कोरा	—	1
मारिका लड्डू	—	1
दुर्गामाधव पर रंग (दुर्गामाधव बनक) के लिए		
कांला पूरी	—	1
पाट खंडुवा	—	1
बोईराणी साड़ी	—	11
फेंटा	—	14
श्रीकपदा	—	1
बसंत अघन तइप	—	2
चेमिडि	—	1
केंदुलि साड़ी	—	1
प्रति अणवसर पर खर्च बाबत	—	4 रुपये 2 आना
नवकलेवर पर खर्च बाबत	—	10 रुपये
शोध के समय खर्च बाबत	—	3 आना

दत्तमहापात्र मंदिर के दैनंदिन सेवकों की गिनती में नहीं आते। नियमित सेवकों को मंदिर में सेवा से पूर्व या उनके प्रतिनिधि के द्वारा साड़ी बंधन की रस्म पूरी करनी होती है। साड़ी बंधन द्वारा दत्तमहापात्र को सेवक समुदाय में शामिल माना जाता है। अगर सेवा में किसी तरह की त्रुटि हो तो उनकी 'खेइ' बन्द कर दी जाती है। और कोई दैतापति या शुद्धसुआर के सुपुर्द कर दिया जाता है।

'बनकलागि' एक और महत्वपूर्ण विधान है। पूजा के दौरान हो जाने वाले खरौंच आदि दूर करने के लिए हफ्ते में एक बार (प्राय: गुरूवार को) विग्रहों पर रंग किया जाता है। भीड़ होने पर बुधवार को भी यह कार्य सम्पन्न किया जाता है। यह कार्य सायं साढ़े तीन और चार बचे के बीच 'द्विपहर धूप' के बाद किया जाता है। आजकल मितव्ययिता की दृष्टि से महीने में एक बार 'बनकलागि' संपन्न होता है। दत्तमहापात्र ही नेत्रोत्सव के दिन नेत्र बनकलागि की विधि संपन्न करते हैं। प्रति बनकलागि पर करीब तीन सौ रुपये खर्च होता है। इसमें कस्तूरी का खर्च शामिल नहीं है जो कि नेपाल के राजपरिवार की ओर से भेंट की जाती है।

नवकलेवर के समय चारों विग्रहों का नवनिर्माण होता है। पुराने विग्रहों को 'कोइलि वैकुण्ठ' में समाधिस्थ कर दिया जाता है। विग्रह निर्माण के बाद विग्रहों को मंदिर के अन्दर ले जाते हैं। पहले पट (रेशमी वस्त्र) लेप दिया जाता है। इस प्रकार विग्रहों को एक आकार दिया जाता है। रेशमी पट्टियों को 'नेत पाट' कहा जाता है। इस कपड़े पर मैदा का लेप किया जाता है। नया कपड़ा कच्ची मैदा के घोल में भिंगोकर विग्रहों पर लपेटा जाता है जो सूख कर चिपक जाता है। इसके ऊपर रंग एवं चित्रकारी की जाती है। **'नीलाद्रि महोदय'** ग्रंथ में इसी से मिलती जुलती विधि का वर्णन हुआ है। यह सारा कार्य दइतापति महापात्र के तत्वावधान में संपन्न होता है। ये दइतापति स्वंय को विश्वावसु शवर के वंशधर बताते हैं जिसने नीलमाधव की पूजा की थी और बाद में वे नीलमाधव ही जगन्नाथ बने। शुद्धसुआर, दत्तमहापात्र एवं स्वाई महापात्र आदि इस विधि से जुड़े होते हैं। दइतापति नाप-जोख बताते हैं एवं अन्य निर्देश देते हैं, विश्वकर्मा काष्ठ के विग्रह का निर्माण करते हैं, स्वाई महापात्र घट परिवर्तन करते हैं। दत्तमहापात्र रंग करते हैं तथा शुद्धसुआर रंग आदि सामग्री प्रस्तुत करने में सहायता करते हैं। कोई पकाई गयी सामग्री काम में नहीं लायी जाती। परिवार की कोई स्त्री भी इस कार्य में सहायता नहीं कर सकती। वार्षिक पारी के अनुसार वे इस कार्य को करते हैं। यह तो सरकारी समयानुसार होता है। दरअसल सभी भाई मिल कर यह कार्य करते हैं। हालांकि निर्धारित उपहार आदि एक ही भाई लेता है।

बनकलागि के लिए आवश्यक सामग्री

हिंगुल	—	10 ग्राम
हरितालिका	—	250 ग्राम
केंथ गोंद	—	500 ग्राम
कर्पूर	—	40 ग्राम
कस्तूरी	—	मात्रानुसार
शंख	—	मात्रानुसार
केशर	—	मात्रानुसार

दत्तमहापात्र को प्राप्त होने वाली भेंट

1. खेई-वर्षभर नियमित निर्धारित मात्रा में बराबर दिया जाता रहता है।
2. पखाल (सानधूप का)
3. माठपुली

4. गीतगोविन्द खांडुवा (या बदले में 70 रुपये)

5. तड़प (बारह हाथ की साड़ी)—वर्ष में एक बार

6. पाट पटनी (करीब बारह हाथ)—दो

7. बोइराणी—सोलह

8. श्रीकपड़ा (छोटी पट्टीदार कपड़ा)—आठ

इसके दौरान वे शुद्धता एवं पवित्रता का पूरा पालन करते हैं। यहां तक कि पैखाने के बाद स्नान और वस्त्र बदलना जरूरी होता है, रंग के लिए जल ब्राह्मण ही लाते हैं।

चित्रकारों के पुरी श्रीमंदिर में अनेक दायित्व हैं। निम्न अवसरों पर पटि अंकन करते हैं।

1. जन्माष्टमी (भाद्रपद कृष्ण अष्टमी)

2. वामन जन्म (भाद्रमास में)

3. दमनक चोरी (वैशाख मास में)

4. कंदर्प अधिवास (चैत्र मास में बसंतोत्सव के समय)

इनके अलावा वैशाख में रुक्मिणी विवाह के समय मंडप को रंग आदि करने का कार्य भी चित्रकारों को करना होता है। इसके लिए आठ आना मिलता है। वैशाख में चंदनयात्रा के समय चाप (नाव) को भी रंग देना पड़ता है। इसके लिए वे दो रूपये पाते हैं। चंदन मंडप जगति को रंग देते हैं और पंद्रह रुपये पाते हैं। चित्रकार को आठ वस्त्र खंड तथा खीर का भोग मिलता है। न उन्हें 'खेई' मिलती है और न दैनंदिन भोग। न ही इन कार्यों के लिए उन्हें कोई जागीर मिली है। भंवरी तथा अक्षय तृतीया के दिन उन्हें अनखुला नारियल और भात की आधी हांडी मिलती है।

हालांकि ये चित्रकार वंश परंपरा में होते हैं, परन्तु इनकी नियुक्ति भी 'साढ़ीबंध' की विधि से ही होती है। अगर कोई चित्रकार गलती करता है या कर्त्तव्य की उपेक्षा करता है तो मंदिर सेवा से हटा दिया जाता है और दूसरे चित्रकार को नियुक्त कर दिया जाता है।

श्रीमंदिर के विधि विधान ही अन्य जगन्नाथ मंदिरों में सर्वत्र माने जाते हैं। कुछ विधान आजकल मितव्ययिता की दृष्टि से छोड़ दिये गये हैं।

चित्रकार विभिन्न आधारों पर अंकन करते हैं। जैसे पट, वस्त्र, कागज, चर्म, काष्ठ, एवं मिट्टी। आधारों की भिन्नता के अलावा शैली में कोई अंतर नहीं होता।

पटि निर्माण के लिए पुराने कपड़े पर सरेस का घोल लेप कर सुखा देते हैं। इसके बाद सफेद चाक में घुले सरेस का लेप किया जाता है। इस पर चिकने पत्थर से घिस कर पटि को चमड़े की तरह चिकनी तथा लचीली बना लिया जाता है।

पारलाखेमंडी में बिना पूर्व तैयारी के नये कपड़े का उपयोग भी चित्रकार करते हैं। कपड़े को हल्दी के पानी में डुबोते हैं, सुखाकर उन पर चित्रण करते हैं।

भित्ति चित्र के लिए प्राय: दीवारों का उपयोग होता है। मंदिर की भित्ति पर पहले हल्का आधार तैयार किया जाता था। कहीं-कहीं धोकर या चूना पोत कर भी चित्र बनाये गये हैं। आधार बनाने के लिए चूना, गुड़, बिल्व फल के गोंद आदि को मिलाकर जूट के छोटे टुकड़ों से लीपते थे।

कहीं-कहीं कागज का भी इस चित्रकारी में प्रयोग होता है। उड़ीसा में हाथ के बने कागज के कोई प्रमाण तो नहीं मिलते। कुछ चित्र ढाल और चर्म पर भी पाये जाते हैं। ऐसे कुछ नमूने ढेंकानाल के म्यूजियम में मिले हैं।

काष्ठ की सतह का प्रयोग सीधे चित्रण के लिए किया जाता है। कभी-कभी सतह पर कपड़ा लपेट देते हैं। काठ के पैनेल, काठ के खोल, मुखौटे, खिलौने, दहेज-बाक्स आदि इसी प्रकार की चीजें हैं जिन पर मिले हैं।

इन सभी में चित्रकारी की प्रणाली प्राय: समान होती है। पहले हल्की लाल रेखाओं से रेखांकन होता है, और फिर भिन्न-भिन्न रंगों को भरते हैं। बाद में काले रंग से रेखाओं से सजाते हैं। लेकिन किसी धार्मिक चित्र का अंकन करते समय चित्रकार पूर्णत: सात्विकता बरतते हैं। प्रारंभ से अन्त तक (जिसे चक्षुदान कहते हैं) नियम पूर्वक रहते हैं। इस अवसर पर चित्रकार (चाहे पट करता हो या भित्तिचित्र) वह सांचा (निर्दिष्ट अनुदान), धोती एक जोड़ा और दक्षिणा पाता है। कुल मिलाकर 4-5 रुपये में हो जाता है। विवाह या यज्ञोपवीत के समय भित्तिचित्र बनाने के लिए चित्रकारों को परिवार के सदस्य की भाँति निमंत्रण एवं सम्मान मिलता है।

इस सदी में पट चित्रकला के प्रसार केवल जगन्नाथ मंदिरों के कारण ही नहीं वरन् व्यावसायिक कारणों से भी हो सका है। उड़ीसा हस्तशिल्प समवाय निगम बनने के बाद हस्तशिल्प डिजाइन केन्द्र की स्थापना भी हुई है। अब वे चित्रकार भुवनेश्वर के पास एक कालोनी बना कर बस गये हैं। इसी प्रकार मूर्तिकार, मुखौटे बनाने वाले, खिलौने वाले तथा ताइपोथी लिखनेवाले भी बसे हैं।

हस्तशिल्प निगम के बाद एक कालोनी बन जाने से कुछ समस्याएँ उठ खड़ी हुई है। तालीम केन्द्रों में प्रदेश के विभिन्न भागों में लोगों के आने के बाद ये समस्याएँ और भी उग्र हो उठी है। कालोनी के निवासियों ने, जो कि इस केन्द्र के शिक्षक हैं, एक विशिष्ट शैली का विकास किया है, उड़ीसा में विभिन्न शैलियों को ओडिसी शैली के परिप्रेक्ष्य में ही देखा जाता है। उदाहरण के तौर पर बरगढ़के लकड़ी के बने खिलौने, सोनपुर के बने रामायण संबंधी गंजपा और पुरी के यात्री-पटि। ये सब अपनी-अपनी विशेषता के आधार पर स्थानीय वैशिष्ट्य के कारण अपनी अलग छाप लिये होते हैं। लेकिन अब इन सब का निर्माण भुवनेश्वर की इस कालोनी में संभव है। इससे क्षेत्रीय केन्द्रों में इन कलाओं का विकास बाधित हुआ है। चित्रकारों को भी इस कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इससे क्षेत्रीय कला के नष्ट होने की आशंका हो गयी है।

बैंकों ने चित्रकारों को आर्थिक सहायता दी। पर्यटकों ने निगम के विक्रय केन्द्रों से इन चित्रों को खरीद कर प्रोत्साहन प्रदान किया। लेकिन अधिक उत्पादन के लिये नौसिखियों को भी काम पर लगाना पड़ा। फलत: चित्रकारों के स्तर में तेजी से गिरावट आ गयी। पट चित्र तीर्थयात्रियों के लिए विक्रय हेतु बनते थे। श्रीमंदिर प्रांगण में ही इन यात्री-पटि का विक्रय होता था या बाहर अरुण स्तम्भ के पास बेचे जाते थे।

लेकिन यात्रियों की रुचि और मांग के अनुरूप विभिन्न प्रकार के आकार प्रकार की पटि बनायी जाती है। मात्र अलंकरण या संयोजन या आकार-प्रकार को छोड़कर ये चित्र किसी प्रकार से कलात्मक भिन्नता नहीं रखते। लेकिन अब स्थिति बदल गयी है। अधिक उत्पादन को ध्यान में रखकर सामग्री की विविधता विक्रय केन्द्रों पर मिलने वाले पट चित्रों से स्पष्ट दिखाई देती है।

माँग को ध्यान में रखकर रेशमी वस्त्र पर भी पट चित्र बन रहे हैं। इन्हें उँचे दाम पर बेचा जाता है। पहले भी जगन्नाथ, बलभद्र एवं सुभद्रा के कम कीमत पर यात्री पटि बनाने के प्रयास हुए थे। जगन्नाथ पटि के लिथोग्राफ उठाये गये। अब जगन्नाथ के इन चित्रों की अनेक शैलियाँ मिल जायेगी। लेकिन इनका निर्माण चित्रकारों से नहीं होता। यात्री-पटि का स्थान इन बाजार चित्रों ने ले लिया है।

अब रघुराजपुर और दांडसाही के चित्रकार केवल जगन्नाथ, बलभद्र एवं सुभद्रा की यात्री-पटि बनाने तक ही सीमित नहीं है, ग्राहक की माँग के अनुसार अन्य प्रकार के चित्र भी बनाने पड़ते हैं। अब अपने मूल से कहीं आगे बढ़गये हैं। विकास में यह होना तो अवश्यंभावी है। अब यह केवल जगन्नाथ धारा का नमूना ही नहीं रह गयी, वरन् एक अंचल विशेष की कला के उद्देश्य से संग्रह करने की वस्तु बन गयी है।

हालांकि इस कला के पुनरुत्थान के प्रयास अमरीकन मित्रता आयोग (ए.एफ.सी.) की श्रीमती हलीना जेली ने किया था, लगता है उनका प्रयास कुछ दूसरी दिशा में चला गया है। आज तो चित्रकार युद्ध-व्यवसाय की ओर उन्मुख है, जिससे यह परिस्थिति उपजी है।

ये सारी बातें पुरी या आस पास के क्षेत्र के लिए ही कही जा सकती हैं। लेकिन गंजाम, कटक, ढेंकानाल, सम्बलपुर, कोरापुट आदि जिलों में रहने वाले चित्रकार परिवारों की हालत आज भी वैसी ही है। आज भी स्थानीय मंदिरों का कार्य करते हैं, जागीर भोगते हैं। इस उत्थान पतन के बीच भी श्रीमंदिर में चित्रकारी पारंपरिक ढंग से ही हुआ करती है। इसके विकास में सही कार्य किसी ने किया है तो वह है जगन्नाथ मंदिर निर्माण का विकास। पट चित्र निर्माण मुख्यत: मंदिर कला है। मूलत: विग्रहों और इस परंपरा का प्रचार चित्रों के माध्यम से किया जाता है। इस कला में धार्मिक दृष्टिकोण इतना रूढ़ है कि पट-चित्रों में अब भी सिवाय कुछ और देवी-देवताओं के अंकन के अधिक कुछ नहीं हुआ। या फिर कुछ **रामायण महाभारत** के दृश्य पटचित्रों के विषय बने रहे हैं। जब कि कालीघाट की पट-चित्रकला में सामाजिक विषयों को भी लिया जाने लगा है। नाथद्वारा शैली में अनेक ऐतिहासिक विषय भी आ गये हैं लेकिन उड़ीसा के चित्रकार केवल अपने देवी-देवताओं और उनकी लीलाओं का ही अंकन करते हैं।

कागज या ताड़पत्र से भिन्न पट चित्र-शैली का लक्ष्य सीमित है। इसके विषय जगन्नाथ और राधा कृष्ण परम्परा में सीमित एवं पूर्व निर्धारित है। चित्रकार को इन्हीं सीमाओं में कार्य करना पड़ता है। फलस्वरूप पट-चित्रकला में सृजन के लिए बहुत कम गुंजाइश बची रहती है।

चित्रकार परिवारों की वृद्धि के साथ-साथ जगन्नाथ मंदिरों में ही सीमित रहना संभव नहीं है। निगम तथा अन्य विक्रय संस्थानों के सहारे चित्रकारों को रोजी-रोटी की समस्या का सामना नहीं करना पड़ता। लेकिन दूर-दराज के चित्रकार या तो यह कार्य छोड़ रहे हैं या फिर साइकिल मरम्मत जैसा छोटा-मोटा धंधा अपनाने लगे हैं। आजकल यज्ञोपवीत, विवाह आदि पर भित्तिचित्र बनाने के लिए इन्हें कुछ अधिक पैसा मिल जाता है। गंजपा चित्र, मुखौटा आदि से भी कुछ आय कर लेते हैं। समाज का आधुनिकीकरण हो रहा है। इस प्रकार ग्राम्य संस्कृति और लोक कला में नवीनीकरण होना अवश्यंभावी है। फिर चित्र के नये माध्यम, रासायनिक रंग आदि ने भी क्रांति लायी है। इसके लक्षण स्पष्ट दिख रहे हैं। यद्यपि परिवर्तन सर्वथा निरापद नहीं हैं। विशेष रूप से कलात्मक स्तर को लेकर। दूर से दिखने वाली चमक-दमक और अत्यधिक आलंकारिकता वास्तविक सौंदर्य को नष्ट कर देती है। इसके बावजूद भी जीवित रहने के लिये चित्रकारों को यह सब करना पड़ेगा। परन्तु अपनी परम्परागत शैली और कलात्मक स्तर को बनाये रखना, उस पर दृष्टि रखना, व्यावसायिक के मोह से ऊपर उठ कर एक समर्पण की भावना के बिना संभव नहीं है।

* * *

ज्ञान प्रवाह में उड़ीसा पटचित्रों पर आयोजित विशेष कार्यशाला में पठित निबन्ध।